

५३६. कुणाल जातक

“येवमवस्त्रायति” यह शास्ता ने कुणाल-सरोवर पर विहार करते समय मन के उचाटपन से पीड़ित पाँच सौ भिक्षुओं के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

(दान-कथा आदि क्रम से कही जाने वाली) अनुपूर्वी-कथा इस प्रकार है :—
शाक्य तथा कोलिय कपिलवस्तु और कोलिय-नगर के बीच रोहिणी नदी पर एक ही बाँध बाँध कर खेती करते थे । जेठ महीने के अन्त में खेती के कुम्हला जाने पर दोनों नगर-वासियों के कमकर लोग इकट्ठे हुए । कोलिय-वासी बोले-“इस पानी को यदि दोनों लेंगे तो यह न तुम्हारे लिए ही पर्याप्त होगा और न हमारे लिये ही । हमारी खेती को एक ही पानी और चाहिए । यह पानी हमें दें ।” कपिलवस्तु-वासी बोले : “जब तुमने अपने कोठे भर रखे होंगे तो हम रक्त-वर्ण स्वर्ण, नील-वर्ण मणि तथा काले कार्षापणों के साथ हाथ में टोकरी और थैली आदि लेकर तुम्हारे घर-द्वारों पर घर-घर न घूम सकेंगे । हमारी भी खेती एक ही पानी से हो जायेगी । यह पानी हमें ही दे दें !”

“हम नहीं देंगे !”

“हम भी नहीं देंगे !”

इस प्रकार बात बढ़ते-बढ़ते बढ़ गयी । एक उठा और उसने दूसरे को एक लगा दी । उसने भी उसे एक । इस प्रकार उन्होंने परस्पर मार-पीट की और राजकुल को बीच में घसीट कर झगड़ा बढ़ा दिया । कोलिय कमकर बोले-“तुम कपिलवस्तु वासी लेकर जाओ । जो कुत्ते, गीदड़ आदि की तरह अपनी बहन के साथ रहते हैं, ऐसों के हाथी-घोड़े अथवा इनके ढाल आदि हथियार हमारा

क्या करेंगे !” शाक्य कमकर बोले: “तुम अब कोढ़ी के बच्चे लौट जाओ। जो अनाथ अशरण होकर तिरश्चीन-प्राणियों की तरह कोल-वृक्ष में रहते रहे हैं, उनके हाथी घोड़े अथवा ढाल आदि हथियार हमारा क्या करेंगे ?” उन्होंने जाकर उस काम के अधिकारी अमात्यों को यह बात कही। अमात्यों ने राज-कुल में कही। तब शाक्य युद्ध के लिए निकल पड़े, “बहन के साथ रहने वालों की शक्ति और बल दिखायेंगे।” कोलिय भी युद्ध के लिए तैयार हुए, “कोल-वृक्ष में रहने वालों की शक्ति और बल दिखायेंगे।”

दूसरे आचार्यों का मत है कि शाक्य और कोलियों की दासियाँ नदी पर पानी लेने गयीं। वहाँ चाटियाँ जमीन पर रख बैठकर गप मारने लगीं। किसी एक की चाटी दूसरी ने अपनी समझ कर ले ली। उस चाटी के लिए “मेरी चाटी तेरी चाटी” झगड़ा हो गया। यह झगड़ा बढ़कर दो नगरों के दास-कमकरोँ तक और वहाँ से भोजक-अमात्यों तथा उपराजाओं तक जा पहुँचा। सभी युद्ध के लिए तैयार होकर निकल पड़े। इस वर्णन की अपेक्षा पहला वर्णन ही अधिकांश अट्टकथाओं में आया है। वही समीचीन प्रतीत होता है। इसलिए उसी को ग्रहण करना चाहिए। वे सन्ध्या समय युद्ध के लिए तैयार होकर निकलने वाले थे।

उस समय भगवान ने श्रावस्ती में विहार करते समय, प्रातःकाल लोक का विचार करते हुए, उन्हें इस प्रकार युद्ध के लिए सज्जित हो निकलते देखा। उन्होंने विचार किया “मेरे जाने पर यह कलह शान्त हो जायेगा अथवा नहीं ?” उन्होंने देखा, “मैं वहाँ पहुँच कर कलह-शान्ति के लिए तीन जातक-कथायें-सुनाऊँगा।” उससे कलह शान्त हो जायेगा। फिर एकता-महात्म्य प्रकट करने के लिए दो जातक-कथायें सुनाऊँगा और अत्त-दण्ड सूत्र का उपदेश दूँगा। उपदेश सुन दोनों नगरों के निवासी ढाई-ढाई सौ कुमार देंगे। मैं उन्हें प्रव्रजित करूँगा। बड़ा समूह एकत्र होगा।” इस प्रकार निश्चय कर, शारीरिक कृत्य समाप्त कर, श्रावस्ती में भिक्षाटन कर, पिण्डपात से लौट, शाम को बिना किसी को सूचित किये, अपना पात्र चीवर स्वयं ही लिए, गन्धकुटी से निकल, दोनों सेनाओं के बीच, आकाश में पालथी मार कर बैठे और उन्हें घमकाने के हेतु, अन्धकार फैलाने के लिए काली-किरणें छोड़ीं। फिर उन भयभीत हृदयों पर अपने आप प्रकट करने के लिए छःवर्ण की बुद्धिरश्मियाँ छोड़ीं। कपिलवस्तु-वासियों ने भगवान को देखा तो सोचा, “हमारे श्रेष्ठ सम्बन्धी शास्ता आ गये हैं। शायद

उन्होंने हमारी कलह करने की तैयारी देख ली है। शास्ता के आ पहुँचने पर हम किसी के शरीर में शस्त्र नहीं धोप सकते। चाहे कोलिय-वासी हमें मारें चाहे कष्ट दें।” उन्होंने शस्त्र रख दिए। कोलिय-वासियों ने भी वैसा ही किया।

तब भगवान (आकाश से) उतर कर रमणीय-प्रदेश में बालुका तट पर बिछे बुद्धासन पर बैठे। उस समय उनके शरीर से अनुपम बुद्ध-रश्मि निकल रही थी। वे राजागण भी भगवान को नमस्कार कर बैठे। शास्ता ने जानते हुए भी उनसे पूछा, “महाराज ! यहाँ कैसे आये ?”

“भन्ते ! न नदी-दर्शन के लिए और न खेलने के लिए, हम लोग यहाँ संग्राम उपस्थित होने के कारण आये।”

“महाराजाओं ! तुम्हारे कलह का क्या कारण है।”

“भन्ते ! पानी के लिए।”

“महाराजाओं ! पानी का मूल्य कितना होता है ?”

“भन्ते ! थोड़ा सा।”

“महाराजाओं ! भूमि का मूल्य कितना होता है।”

“भन्ते ! भूमि अमूल्य होती है।”

“महाराजाओं ! क्षत्रियों का कितना मूल्य होता है।”

“भन्ते ! क्षत्रिय अमूल्य होते हैं।”

“महाराजों, थोड़े मूल्य पानी के लिए अमूल्य क्षत्रियों का नाश क्यों करते हो। कलह में आनन्द नहीं है। एक वृक्ष-देवता और काल-सिंह का बद्ध-वैर इस सारे कल्प जारी रहा।” यह कह शास्ता ने कन्दन-जातक^१ कही। फिर : “महाराज ! दूसरों का अन्धविश्वासी नहीं होना चाहिए। दूसरों का अन्ध-विश्वासी होने से एक खरगोश की बात पर विश्वास कर तीन हजार योजन विस्तार के हिमालय के सारे चतुष्पाद महासमुद्र में गिरने वाले हुए। इसलिए दूसरे का अन्ध विश्वासी नहीं होना चाहिए।” इतना कह ददभ जातक^२ कही। फिर “महाराज ! कभी दुर्बल भी महाबलवान् की कमजोरी देख लेता है, कभी महाबलवान् भी दुर्बल की, चिरैया ने भी हाथी को मार डाला” कह लटुकिक

१ कन्दन जातक (४७५)।

२ ददभ जातक (३३२)।

ख. अतीत कथा

ऐसा कहा जाता है, ऐसा सुना जाता है कि कुणाल नाम का पक्षी ऐसे वन-खण्ड में रहता था, जहाँ सभी औषधियाँ प्राप्त थीं, जहाँ अनेक प्रकार के फूल तथा फल मलाएँ थीं; जहाँ हाथी, बैल, भैंस, स्वर्ण-वर्ण मृग, चेंवरी-मृग-चितकबरा-मृग गेण्डा, गो-कर्ण, सिंह, व्याघ्र, चीता, भालू रीछ (?) उपद्र-मृग, कदली-मृग, बिल्ले, खरगोश, तथा कण्ठिक (?) विचरते थे, जहाँ तरुण हाथियों से घिरे हुए बड़े-बड़े हाथी, नाग, हस्तिपोतकों के संघ रहते थे, जहाँ काले सिंह बंदन, शरभ-मृग, एणि मृग, वात-मृग, चितकबरे-मृग, घोड़ी-मुख यक्षणियाँ, किन्नर दक्ष तथा राक्षस निवास करते थे, जहाँ कली; मंजरी और बड़े पुष्पों से युक्त अनेक समूह थे, जहाँ चील, चकोर वारण मोर, पराभूत (?) जीव-जीवक, चेलावक, भिकार, कोयल, आदि (?) सैकड़ों प्रकार के पक्षी थे और जो प्रदेश अञ्जन, मनोशिला, हरिताल, हिंगूलक, सोना, चाँदी, स्वर्ण आदि सैकड़ों प्रकार की धातुओं से मण्डित था। वह अत्यन्त सुन्दर था। उसके पंख अतीव मनोहर थे। उसी कुणाल-पक्षी स्वामी की साढ़े तीन हजार स्त्रियाँ पक्षि-कन्यायें परिचारिका थीं। दो कन्यायें काठ को मुँह में लेकर उस कुणाल स्वामी को बीच में बैठाकर उड़ती थीं “इस कुणाल स्वामी को रास्ते में कष्ट न हो।” पाँच सौ पक्षि-कन्यायें नीचे नीचे उड़ती थीं, “यदि यह

कुणाल स्वामी आसन से गिरेगा तो हम इसे परों पर सँभाल लेंगी ।” पाँच सौ पक्षि-कन्यायें ऊपर-ऊपर उड़ती थीं, “कुणाल स्वामी को धूप से कष्ट हो ।” पाँच सौ पक्षि-कन्यायें दोनों ओर उड़ती थीं, “इस कुणाल स्वामी को शीत, गरमी, तृण, धूल, हवा अथवा ओस से कष्ट न हो ।” पाँच सौ पक्षि-कन्यायें आगे-आगे जातीं थीं “कुणाल स्वामी को ग्वाले, पशु-पालक, घसियारे लकड़हारे अथवा जंगल में काम करने वाले काष्ठ से वा ठीकरे से वा हाथ से वा ढैले से वा डन्ड से वा शस्त्र से अथवा कंकरों से चोट न करें । यह कुणाल स्वामी वृक्षों से लताओं से वेड़ों से, स्तम्भों से, पत्थरों से अथवा बलवान पक्षियों से न टकरावे ।” पाँच सौ पक्षि-कन्यायें पीछे-पीछे उड़ती थीं, चिकनी चुपड़ी, सुन्दर मधुर वाणी बोलती हुई, “यह कुणाल स्वामी बैठा-बैठा घबरा न जाये ।” पाँच सौ पक्षि-कन्यायें किशा-विदिशा में उड़ती थीं, अनेक वृक्षों से नाना प्रकार के फल लाती हुई, “यह कुणाल स्वामी भूख से कष्ट न पाये ।”

वे पक्षि-कन्यायें उस कुणाल-स्वामी को आराम से आराम में, उद्यान से उद्यान में, नदी तट से नदी तट में, पर्वत शिखर से पर्वत-शिखर में, आम्रवन से आम्रवन में, जामुन-वन से जामुन-वन में, कटहल-वन से कटहल वन में तथा नारियलों के समूह से नारियलों के समूह में शीघ्र ही रति-क्रीड़ा के लिए प्राप्त होतीं ।

“भिक्षुओं इस प्रकार उन पक्षि-कन्याओं से रोज-रोज घिरा रहने पर भी कुणाल स्वामी उन्हें इस प्रकार डाँटता था, “चण्डालिनों तुम्हारा नाश हो, चाण्डालिनों तुम्हारा विनाश हो, चोर हो धूर्त हो, असति हो, चंचल हो, अकृतज्ञ हो, हवा की तरह जहाँ चाहे वहाँ पहुँच जाने वाली हो ।”

इतना कह भिक्षुओं, तिरश्चीन योनि में रहते समय भी स्त्रियों की अकृतज्ञता, बहुमायावीपन, अनाचार, दुःशीलता जानता था । उस समय मैं उनके वश में न होकर उन्हें ही अपने वश में रखता था” इस कथा द्वारा शास्ता ने उन भिक्षुओं की अरुचि दूर कर दी और चुप हों गये । उसी समय दो काली कोयलें स्वामी को डण्डे पर लिए, नीचे-ऊपर आदि चार होकर वहाँ आ पहुँची । उन्हें भी देख कर भिक्षुओं ने शास्ता से पूछा । शास्ता ने “भिक्षुओं, यह पहले मेरा पूर्णमुख नाम मित्र पुण्य-कोकिल था । यह उसकी वंश परम्परा है,” कह उपरोक्त प्रकार ही भिक्षुओं के पूछने पर कहा—

उसी हिमालय पर्वत-राज के पूर्व सुसूक्ष्म-सुनिपुण पर्वत से बहने वाली नदियाँ जिस हरित-कुणाल सरोवर में गिरती हैं,

जहाँ नीले-उत्पल, कुमुद, पद्म, श्वेतपद्म, शतपत्र, सोगन्धिक, मन्दालक (आदि) नवीन-जात, सुगन्धित, मनोज्ञ पुष्प हैं,

जहाँ करवक, मुचलिन्द, केतक, चेतस, वजुळ, पुन्नाग, बकुल, तिलक, पिपक असन, साल, सलक, चम्पक, अशोक, नाग-वृक्ष, तिरीट, भुज-पत्र, लोद तथा चन्दन का वन है,

जहाँ काल-गलु (?) पद्मक, पियंगु, देवदारुक तथा कदली का समूह है, जहाँ ककुध, कुजट, अंकोल; कच्चिकार, कणिकार, कणवेर, कोरण्ड, कोविलार किसकु, योघिय, वनमल्लिक, अनङ्ग, अनवध, भण्डी, रुचिर, भगिनी आदि पुष्पों की मालायें थीं,

जहाँ जाति-सुमन, मधु-गन्धिक, धनकारिक, तालीस, तगर, उसीर; कोट्ठ तथा कच्छ फैले हुए थे,

जहाँ अति-मुक्तक; संकुसुमित लतायें थीं,

जहाँ हंस, वत्सख, कादम्ब तथा कारण्डव निनाद करते थे, जहाँ विद्याधर सिद्ध, श्रमण तथा तपस्वी-गण रहते थे तथा जहाँ वरदेव, यक्ष, राक्षस, दानव, गन्धर्व, किन्नर, महीरग थे—ऐसे रमणीय वनखण्ड में पूर्ण मुख नाम का पुण्य-कोकिल रहता था, अत्यन्त मधुर-भाषी, विलासपूर्ण-अनुरक्त आँखों वाला। उसी पूर्ण-मुख पुण्य-कोकिल की साढ़े तीन सौ स्त्रियाँ पक्षि-कन्यायें परिचारिका थीं। दो पक्षि-कन्यायें मुँह में काष्ठ लेकर उस पूर्ण-मुख पुण्य-कोकिल को बीच में बिठा कर उड़ती थीं, “इस पूर्ण-मुख पुण्य-कोकिल को मार्ग में कष्ट न हो।” पचास पक्षि-कन्यायें नीचे नीचे उड़ती थीं, “यदि पूर्ण-मुख पुण्यकोकिल नीचे गिरेगा तो हम इसे परों पर संभाल लेंगी।” पचास पक्षि-कन्यायें ऊपर ऊपर उड़ती थीं, “पूर्ण-कोकिल को धूप से कष्ट न हो।” पचास पक्षि-कन्यायें दोनों ओर उड़ती थीं, “पूर्ण-मुख पुण्य-कोकिल को शीत, गरमी, तृण धूल, हवा अथवा ओस से कष्ट न हो।” पचास पक्षि-कन्यायें आगे-आगे जाती थीं, पूर्णमुख पुण्य-कोकिल को ग्वाले, पशु पालक, घसियारे लकड़हारे, अथवा जंगल में काम करने वाले काष्ठ से वा ठीकरे से वा हाथ से वा ढेले से वा डण्ड से वा शस्त्र से अथवा

कंकरो से चोट न कर, यह पूर्ण-मुख पुण्य-कोकिल वृक्षों से, लताओं से पेड़ों से, स्तम्भों से, पत्थरों से अथवा बलवान पक्षियों से न टकराये ।' पचास पक्षि-कन्यायें पीछे-पीछे उड़ती थीं, चिकनी-चुपड़ी, सुन्दर मधुर-वाणी बोलती हुई, "यह पूर्ण-मुख पुण्य-कोकिल बैठा-बैठा घबरा न जाय ।" पचास पक्षि-कन्यायें दिशा-विदिशा में उड़ती थीं, अनेक वृक्षों से नाना प्रकार के फल लाती हुई, "यह पूर्ण-मुख पुण्य-कोकिल भूख से कष्ट न पाये ।"

वे पक्षि-कन्यायें उस पूर्ण-मुख पुण्य-कोकिल को आराम से आराम में, उद्यान से उद्यान में, नदी तट से नदी-तट में, पर्वत-शिखर से पर्वत-शिखर में, आश्रयन से आश्रयन में, जामुन-वन में, कटहल-वन से कटहल-वन में तथा नारियलों के समूह से नारियलों के समूह में शीघ्र ही रति क्रीड़ा के लिए प्राप्त होतीं ।

'भिक्षुओं ! वह पूर्णमुख पुण्य-कोकिल उन पक्षि-कन्याओं से घिरा होने पर इस प्रकार उनकी प्रशंसा, करता, "बहुत अच्छा बहनों, यह तुम कुलवन्तियों के योग्य ही है कि तुम इस प्रकार स्वामी की सेवा करो" तब पूर्णमुख पुण्य-कोकिल जहाँ कुणाल स्वामी था वहाँ पहुँचा । कुणाल स्वामी की परिचारिकता पक्षि-कन्याओं ने उस पूर्णमुख पुण्य-कोकिल को दूर से आते देखा । देख कर जहाँ पूर्णमुख पुण्य-कोकिल था वहाँ पहुँची । पहुँच कर उस पूर्णमुख पुण्य-कोकिल को इस प्रकार बोली— "सौम्य पूर्ण-मुख ! यह कुणाल स्वामी अति कठोर, अत्यन्त कठोर-भाषी है । अब तुझसे भी हमें प्रिय-वाणी सुनने को मिले ।" "हाँ, बहनों," कह वह जहाँ कुणाल स्वामी था वहाँ पहुँचा । जाकर कुणाल स्वामी का कुशल-समाचार पूछ, उसके साथ एक ओर बैठ वह पूर्ण-मुख पुण्य-कोकिल उस कुणाल स्वामी को इस प्रकार बोला— "सौम्य कुणाल ! तू किस कारण से सुजात, कुलवन्ती, सम्यक आचरण करने वाली स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार करता है, अप्रिय बोलने वाली स्त्रियों के साथ भी मधुर-भाषी होना चाहिए । प्रिय बोलने वालियों के साथ तो कहना ही क्या !" यह कहने पर कुणाल स्वामी ने उसे इस प्रकार धिक्कारा— "दुष्ट वृषल तेरा नाश हो । दुष्ट वृषल तेरा विनाश हो । तेरे समान स्त्रियों के वश में और कौन पण्डित है ?"

इस प्रकार अनादृत होकर पूर्ण-मुख पुण्य-कोकिल वहीं से लौट गया ।

फिर थोड़े ही समय बाद एक बार पूर्ण-मुख पुण्य-कोकिल को भयानक बीमारी हो गयी, मुँह से रक्त जाने लगा, बड़ी वेदना हुई, मरणान्तक । तब पुण्य कोकिल की परिचारिकाओं पक्षि-कन्याओं के मन में हुआ: “यह पूर्ण-मुखपुण्य-कोकिल रोगी हो गया है । अच्छा हों, इस रोग से मुक्त हो जाय ।” वे उसे अकेला छोड़ जहाँ कुणाल स्वामी था, वहाँ पहुँची । कुणाल स्वामी ने उन पक्षि-कन्याओं को दूर से ही आते देखा । देख कर पूछा—“चण्डालिनियों ! तुम्हारा स्वामी कहाँ है ?”

“मित्र कुणाल ! पूर्णमुख पुण्य-कोकिल रोगी है । अच्छा है, उस रोग से मुक्त हो जाय ।”

ऐसा कहने पर उस कुणाल स्वामी ने उन पक्षि-कन्याओं को इस प्रकार फटकारा: “चण्डालिनियों ! तुम्हारा नाश हो । चण्डालिनियों ! तुम्हारा विनाश हो । चोर हो, धूर्त हो, असति हो, चंचल हो, अकृतज्ञ हो, हवा की तरह जहाँ चाहे वहाँ पहुँच जाने वाली हो ।” यह कह वह जहाँ पूर्ण-मुख पुण्य-कोकिल था, वहाँ पहुँचा और पहुँच कर उस पूर्ण-मुख पुण्य-कोकिल को इस प्रकार बोला—“मित्र पूर्ण-मुख पुण्य-कोकिल ! मैं हूँ ।”

“मित्र कुणाल स्वामी ! मैं हूँ ।”

तब कुणाल स्वामी ने उस पूर्ण-मुख पुण्य-कोकिल को पंखों और चोंच से ले, उठा कर, नाना प्रकार की औषधियाँ पिलाई । उस पूर्ण-मुख पुण्य-कोकिल का वह रोग शान्त हो गया ।

उसके निरोग होने पर वे पक्षि-कन्याएँ भी लौट आयीं । कुणाल स्वामी ने भी कुछ दिन पूर्ण-मुख को फलाफल खिला, जब उसका शरीर सशक्त हो गया, कहा: “मित्र ! अब तू अपनी सेविकाओं के साथ रह । मैं भी अपने निवास-स्थान जाता हूँ ।” वह बोला—“ये मुझे रुग्णावस्था में छोड़ भाग गयीं । मुझे इन धूतिनियों की अपेक्षा नहीं है ।” “तो सौम्य ! तुझे स्त्रियों के पाप के बारे में कहूँगा” कह पूर्ण-मुख को ले, वह हिमालय के पार्श्व पर मनोशिल तक पहुँचा और सात योजन के शाल के नीचे मनोशिलासन पर बैठा । सपरिवार पूर्ण-मुख एक ओर बैठा । सारे हिमालय में घोषणा हो गयी । “आज कुणाल पक्षि-राज हिमालय में मनोशिलासन पर बैठ कर बुद्ध-लीला से धर्मोपदेश देगा, उसे सुनें ।” परम्परा से यह घोषणा छः कामावचर देवताओं तक फैल गयी और वे बड़ी संख्या में इकट्ठे हुए । बहुत सारे नाग,

सुपर्ण, गिञ्ज और वन के देवताओं ने उस बात की घोषणा की। उस समय आनन्द नाम का गृहराज दस हजार गीधों के साथ शृङ्ग-पर्वत पर रहता था। वह भी उस हल्ले को सुन कर धर्म सुनने के लिए, अनुयाइयों सहित आकर एक ओर बैठा। पाँच अभिञ्जाओं से युक्त नारद तपस्वी भी, दस हजार अनुयाइयों सहित हिमालय में घूम रहा था। उसने देव-घोषणा सुनी तो सोचा, “मेरा मित्र स्त्रियों के दोष कहेगा। मुझे भी वह देशना सुननी चाहिए।” वह हजार तपस्वीों सहित ऋद्धिबल से वहाँ पहुँच एक ओर बैठ गया। बुद्धों की देशना में जैसी भीड़ हो जाती है, वैसा ही समूह इकट्ठा हो गया।

तब बोधिसत्त्व ने पूर्वजन्म-स्मरण ज्ञान के बल पर स्त्रियों के दोष प्रकट करने वाली पूर्वजन्म की बातें पूर्ण-मुख को साक्षी करके कही।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिए शास्ता ने कहा—

“भिक्षुओं, पूर्ण-मुख पुण्य-कोकिल को रोग मुक्त हुए अधिक समय नहीं हुआ था” तभी कुणाल स्वामी ने कहा—

“देखी है मैंने पूर्ण-मुख कृष्णा, जिसके दो पिता थे, पाँच पति थे और तब भी वह छठे पुरुष में आसक्त थी, उसकी गरदन से छिन्न-शिरा की तरह लिपटी हुई। आगे यह वाक्य (=गाथा) है—

अथ अञ्जुनो नकुलो भीमसेनो
युधिष्ठिरो सहदेवो च राजा
एते पती पञ्चमतिच्च नारी
अकासि खुञ्ज वामनेन पापं ॥१॥

[अञ्जुन, नकुल, भीमसेन, युधिष्ठिर और सहदेव—इन पाँच पति राजाओं को लाँघ कर नारी ने कुबड़े-बौने के साथ पाप कर्म किया ॥१॥]

“देखी है मैंने सच्च तपावी नामक श्रमणी जो श्मशान में रहती थी, तीन-भात छोड़कर चौथा भात खाती थी; उसने सुनार के साथ पाप किया।

“देखी है मैंने पूर्ण-मुख ! काकति नाम की देवी, समुद्र में रहने वाली बेनतेय की भार्या; उसने नर कुबेर के साथ पाप किया।

“देखी है मैंने पूर्ण-मुख ! कुंगवी लोम-सुन्दरी, एलक-कुमार की कामना करने वाली; उसने धनन्तेवासी षडंग-कुमार के साथ पाप किया ।

“ऐसा ही मैंने जाना है : ब्रह्मदत्त की माता ने कोशलराज को छोड़ पंचाल-चण्ड के साथ पाप किया । इन्होंने तथा अन्यो ने पाप-कर्म किया । इसलिए न मैं स्त्रियों का विश्वास करता हूँ और न उनकी प्रशंसा करता हूँ । जिस प्रकार मही, पृथ्वी समान भाव से अनुरक्त है, जैसे वसुन्धरा उत्तम, अधम सभी का आधार है, सभी को सहन करती है किसी पर कोप नहीं करती है, उसी प्रकार ये स्त्रियाँ हैं, आदमी को चाहिए इनका विश्वास न करें ।

सीहो यथा लीहितमंसभोजनो

वाळामिगो पञ्चहत्यो सुरुद्धो

पस्यहृत्वाद पराहसनेरतो

तथ, इत्थियो, तायो न विस्ससे नरो ॥२॥

[जैसे रक्त-मांस भोजी, कठोर-हृदय, चारों पैरों तथा पाँचवें मुँह वाला दुष्ट-मृग, सिंह, दूसरों की हिंसा में रत रहता है और जबदंस्ती पकड़ कर अपना ग्रास बना लेता है, उसी प्रकार ये स्त्रियाँ हैं । आदमी को चाहिए इनका विश्वास न करे ॥२॥]

“निश्चय से न इनका यथार्थ नाम वैश्या है, न नारी है, न गणिका है, और न बन्धकी है; इनका यथार्थ नाम वधिका है । ये चोरों के समान वेणी-भृंगार किये रहती हैं । शराबी की तरह प्रलाप करने वाली हैं । बनिये की तरह बात बनाने वाली हैं । ईर्ष्या-मृग के सींगों की तरह उलटी होती हैं । साँप की तरह द्वि-जिह्वा होती हैं । प्रताप की तरह थकी रहती हैं । पाताल की तरह कठिनाई से भरी जा सकने वाली होती हैं । राक्षसी की तरह कठिनाई से संतुष्ट होने वाली होती हैं । यम की तरह ले जाने वाली होती हैं । दीप-शिखा की तरह सभी कुछ भक्षण करने वाली होती हैं । नदी की तरह सभी को बहा ले जाने वाली होती हैं । हवा की तरह जहाँ चाहे वहाँ जाने वाली होती हैं । सुमेरु-पर्वत की तरह सभी को अपने समान बना लेने वाली होती हैं । विष वृक्ष के समान नित्य फल-दातृ होती हैं । आगे यह वाक्य (=गाथा) है—

यथा चोरो यथा दिद्धो वाणिजो व विकथ्यनी
 इस्सासिग इवावत्ता दुज्जिह्व उरगो यथा ॥३॥
 सोढमं इव पटिच्छन्ना पातालं इव दुप्पुरा
 रक्खसी विय दुत्तोसा यमो व एकन्त हारियो ॥४॥
 यथा सिखी नदी वातो नेरु नावसमाकता
 विसरक्खो विय पञ्चधा नासयन्ति घरे भोगं
 रतनानन्तकरिस्थियो ॥५॥

[अर्थ ऊपर आ ही गया है ॥ ३—५॥]

इससे आगे नाना प्रकार से अपना वाणी का सौन्दर्य प्रकट करते हुए कहा । “मित्र पूर्णमुख ! ये चार समय पर अनर्थकारी होते हैं । इन्हें दूसरे के यहाँ नहीं रहने देना चाहिए । (१) बैल, (२) गऊ, (३) गाड़ी, (४) स्त्री । इन चारों को पण्डितजन को चाहिए कि घर से बाहर न रखें—

गोणं धेनुं च यानञ्च
 भरियं जातिकुले न वासये,
 भजन्ति रथं अजानका
 अतिवाहेन हनन्ति पुंगवं ॥६॥
 दोहेन हनन्ति वच्छकं
 भरिया जातिकुले पदुस्सति ॥७॥

[बैल, गऊ, गाड़ी और स्त्री को रिश्तेदारों के यहाँ न रखें । अजानकार लोग रथ चलाते हैं और अति-हाँकने से बैल को मार डालते हैं । अति-दोहन से बछड़ा मारा जाता है और स्त्री जातिकुल में दूषित हो जाती है ॥६-७॥]

‘मित्र ! पूर्णमुख ! ये छः काम पढ़ने पर अनर्थकारी होते हैं—(१) बिना डोरी का धनुष, (२) सम्बन्धियों के यहाँ भार्या, (३) उस पार गयी हुई नौका (४) भग्न-धुरी रथ, (५) दूर का मित्र, तथा (६) बुरा साथी । मित्र पूर्णमुख ! आठ बातें होने से स्त्री पति से घृणा करने लगती है—(१) दरिद्र होने से, (२) रोगी होने से, (३) बूढ़ा होने से, (४) शराबी होने से, (५) मूढ़ होने से, (६) प्रमादी होने से, (७) सभी बातों में (स्त्री का) अनुगामी होने से, (८) सब धन देने से । यहाँ यह वाक्य (=गाथा है) ।—

दलिहं आतुरं चापि जिण्णकं सुरसोण्डकं
पमत्तं मुद्धपत्तं च रत्तं किच्चेसु हापनं
सम्बकामपदानेन अवजानन्ति सामिकं ॥८॥

“मित्र ! पूर्णमुख ! नौ बातों से स्त्री दोषी मानी जाती है—(१) आरामों में जाने वाली होती है, (२) उद्यानों में जाने वाली होती है, (३) नदी तट पर जाने वाली होती है, (४) रिश्तेदारों में जाने वाली होती है, (५) दूसरे कुलों में जाने वाली होती है, (६) शीशे तथा दुशालों से अपनी सजावट करने वाली होती है, (७) शराब पीने वाली होती है, (८) बाहर देखने वाली होती है, तथा दरवाजे पर खड़ी होने वाली होती है। यहाँ यह वाक्य (= गाथा) है—

आरामसीला उद्यानं ऊजातिपरकुलं
दुस्समण्डनं अनुपुत्ता या च इत्थि मज्जपायिनी ॥९॥
या च निल्लोकनसीला या च पट्टारठायिनी
नवहि एतेहि ठानेहि पदोसं आहरतित्थियो ॥१०॥

“मित्र पूर्णमुख ! स्त्री चालीस तरह से पुरुष को फँसाती है—(१) अंगड़ाई लेती है, (२) विनम्र बनती है, (३) क्रीड़ा करती है, (४) शर्मीली बनती है, (५) नाखून से नाखून लड़ाती है, (६) पाँव पर पाँव रखती है, (७) काठ से जमीन पर लकीरें खींचती है, (८) बच्चे को ऊपर उछालती है, (९) बच्चे को नीचे उछालती है, (१०) खेलती है, (११) खिलाती है, (१२) चूमती है, (१३) चुमवाती है, (१४) खाती है, (१५) खिलवाती है, (१६) बच्चे को देती है, (१७) बच्चे से माँगती है, (१८) नकल करती है, (१९) ऊँचा बोलती है, (२०) नीचा बोलती है, (२१) प्रकट रूप से बोलती है, (२२) छिपाकर हँसती है, (२३) नाच, गा, बजा, रो, विलास करके तथा विभूषित होकर हँसती है, (२४) देखती है, (२५) हिलाती-डुलाती है, (२६) छिपी चीज को हिलाती है, (२७) जाँघों को उधाड़ती है, (२८) जाँघों को नंगा करती है, (२९) स्तनों को दिखाती है, (३०) काछ दिखाती है, (३१) नाभी दिखाती है, (३२) आँखों को तानती है, (३३) भौंहों को ऊपर उठाती है (३४)

होंठों को काटती है, (३५) जिह्वा को काटती है, (३६) जिह्वा को हिलाती है, (३७) वस्त्र को खोलती है, (३८) वस्त्र को बाँधती है, (३९) बालों को खोलती है, (४०) बालों को बाँधती है । पच्चीस बातों से पूर्ण-मुख दुष्टा स्त्री की पहचान होती है—(१) स्वामी के प्रवास में रहने की प्रशंसा करती है, (२) प्रवास में जाने पर स्मरण नहीं करती है, (३) आने पर अभिनन्दन नहीं करती है, (४) उसका दोष कहती है; (५) उसका गुण नहीं कहती, (६) उसका बुरा कहती है, (७) उसका भला नहीं करती, (८) उसे हानि पहुँचाती है, (९) उसे लाभ नहीं पहुँचाती, (१०) मुँह ढक कर सोती है, (११) मुँह फेरकर सोती है, (१२) अस्थिर होती है, (१३) शोर मचाती है, (१४) लम्बा साँस लेती है, (१५) दुखी (की तरह) रहती है, (१६) बार-बार पेशाब-पाखाने जाती है, (१७) उल्टा आचरण करती है, (१८) पर-पुरुष की आवाज सुनकर कान खोलती है, (१९) उधर ध्यान देती है, (२०) भोग्य-पदार्थों का विनाश करने वाली होती है, (२१) पड़ोसियों से यारी लगाती है, (२२) उसके पैर बाहर होते हैं, (२३) गलियों में अति घूमने वाली होती है, (२४) स्वामी के प्रति गौरव रहित होती है, तथा (२५) प्रदुष्टमना होती है । यहाँ यह वाक्य (—गाथा) है—

(१) — पवासं अस्स [वण्णेति] गतं नानुसोचति

विस्वा पति आगतं नाभिनन्दति

(२) — भत्तारवण्णं न कदाचि भासति

एते पदुट्ठाय भवन्ति लक्षणा ॥११॥

(३) — अनत्थं तस्स चरति असञ्जता

(४) — अत्थं च हापेति अकिच्चकारिनी,

परिदहित्वा सयति परमुखी

(५) — एते पदुट्ठाय भवन्ति लक्षणा ॥१२॥

(६) — परिवत्तकजाता च भवति कुंकुमी

(७) — दीधं च अस्ससति दुक्ख वेदिति

(८) — उच्चारपस्सावं अभिण्ह गच्छति . . . ॥१३॥

विलोमं आचरति अकिञ्चकारिनी
सहं निसामेति परस्स भासतो
निहतभोगा च करोति सन्धवं... ॥१४॥

किञ्छेन लब्धं कसिराभतं घनं
वित्तं विनासेति दुक्खेन सम्भतं
पटिविस्सकेहि च करोति सन्धवं... ॥१५॥

निक्खन्तपादा विसिखानुचारिनी
निच्चं ससामिहि पटुट्ठमानसा
अतिचारिनी होति तथेव अगारवा... ॥१६॥

अभिक्खणं तिट्ठति द्वारमूले
थनानि कञ्छानि च दस्सयन्ति
विसोविसं पेक्खति भन्तचित्ता.... ॥१७॥

सब्बा नदी वंकगती सब्बे कट्ठमया वना
सब्बित्थियो करे पापं लभवाने निवातके ॥१८॥

सचे लभेय खणं वा रहो वा
निवातकं वापि लभेय तादिसं
सब्बा च इत्थी करेय्युं नो पापं
अञ्जं अलद्धा पीठसप्पिनापि(सद्धि) ॥१९॥

नरानं आरामकरासु नारिसु
अनेकचित्तासु अनिग्गहासु च,
सब्बअत्तना पीतिकरापि वेसिया
न विस्ससे, तित्थसमा ही नारियो ॥२०॥

[अर्थ ऊपर आ गया है ॥११-१७॥ सभी नदियाँ टेढ़ी होती हैं । सभी वनों में लकड़ी है । एकान्त मिलने पर सभी स्त्रियाँ पाप करती हैं ॥१८॥ यदि उसे अवसर मिले, छिपा स्थान मिले अथवा वैसा एकान्त स्थान मिले, तो सभी स्त्रियाँ पाप करती हैं । कोई और न मिले तो लंगड़े-झूले के साथ भी ॥१९॥ आदमियों में अनुरक्त, चंचल तथा काबू से बाहर की स्त्रियों का विश्वास न

करे । अपने से सर्वथा प्रसन्न स्त्रियों का भी विश्वास न करे । स्त्रियाँ पानी के घाट के समान होती हैं ॥२०॥]

इसी प्रकार: पूर्व समय में वाराणसी में कण्डरी नाम का राजा था, बहुत ही सुन्दर । अमात्य उसके लिए प्रति दिन हजार सुगन्धित भार लाते थे । उनसे उसके भवन का परिभण्ड (?) बनाकर सुगन्धित भारों को फाड़, सुगन्धित ईंधन बना भोजन पकाते थे । उसकी भार्या भी सुन्दर थी । नाम था किन्नरा । पुरोहित भी उसका पंचालचण्ड नामी था, समान-आयु वाला, बुद्धिमान् । राजा के महल के आश्रम से भवन की चार-दीवारी के अन्दर एक जामुन का पेड़ उग आया । उसकी शाखायें चार-दीवारी के ऊपर लटकती थी । उसकी छाया के नीचे एक घृणित, बदशक्ल लूला रहता था ।

एक दिन किन्नरा ने झरोखे से उसे देखा । वह उस पर आसक्त हो गयी । रात को राजा के साथ रति-क्रीड़ा कर उसे नींद आ जाने पर वह आहिस्ता से उठी और नाना प्रकार का श्रेष्ठ भोजन स्वर्ण-निर्मित सकोरे में रख, उसे पल्ले में बांध, कपड़े की रस्सी से झरोखे से उतर, जम्बु-वृक्ष पर चढ़, शाखा से उतर, लूले को खिलाना और उसके साथ पाप-कर्म किया । फिर जिस मार्ग से आयी थी, उसी मार्ग से प्रासाद पर चढ़, शरीर में सुगन्धी ला, राजा के साथ लेटी । इसी प्रकार वह उसके साथ निरन्तर पाप-कर्म करती । राजा भी नहीं जानता था ।

एक दिन जब वह नगर घूमकर राजभवन में प्रवेश करने जा रहा था, उसने जम्बुवृक्ष की छाया में पड़े हुए, अत्यन्त दयनीय-दशा को प्राप्त एक कुबड़े को देखा । उसे देख, वह पुरोहित से बोला, “इस मनुष्य-प्रेत को देखते हो !”

“देव ! हाँ ।”

“क्या कोई स्त्री इस प्रकार के घृणित पुरुष पर भी आसक्त हो सकती है ?”

यह बात सुनी तो कुबड़े के मन में अभिमान पैदा हुआ, ‘यह राजा क्या बात करता है ! मालूम होता है अपनी देवी के मेरे पास आने की बात नहीं जानता है ।’ उसने जम्बुवृक्ष की ओर हाथ जोड़कर कहा, “हे जम्बुवृक्षवासी देवता ! हे स्वामी ! सुन । एकमात्र तू ही इस बात को जानता है ।” पुरोहित ने उसे ऐसा करते देख, सोचा, “निश्चय से पटरानी जम्बुवृक्ष से आकर इसके

साथ पाप-कर्म करती है ।” उसने राजा से पूछा, “देव ! रात को आपकी देवी का शरीर-स्पर्श कैसा रहता है ?”

“मित्र ! और तो कुछ नहीं जानता । हाँ, आधी रात को उसका शरीर-स्पर्श ठंडा रहता है ।”

“तो देव ! किसी दूसरी स्त्री की बात रहने दें । आपकी पटरानी किन्नरा देवी ही इसके साथ पाप-कर्म करती है ।”

“मित्र ! क्या कहता है ! क्या इस प्रकार की विलास-प्रिया इस धृणित के साथ रमण करती है ?”

“देव ! तो परीक्षा कर देखें ।”

उसने ‘अच्छा’ कहा और सन्ध्याकालीन भोजन के अनन्तर रात को उसके साथ लेटकर उसकी जाँच करने के लिए, स्वाभाविक निन्द्रा आने के समय निद्रागत सा होकर पड़ रहा । देवी भी उठी और उसने वैसा ही किया । राजा उसके पीछे-पीछे जा जम्बु की छाया में खड़ा हुआ ? कुबड़े ने देवी पर क्रोध कर ‘तू बहुत देर करके आयी है’ कह, हाथ से कंकर फेंक कर मारी । वह ‘स्वामी ! क्रोध न करें । राजा के सो जाने की प्रतीक्षा कर रही थी’ कह उसकी चरण-दासी की तरह व्यवहार करने लगी । उसके कंकर मारने से उसका बाला कान से निकलकर राजा के पाँव में जा पड़ा । ‘यह पर्याप्त है’ सोच, राजा उसे ले चला आया । वह भी उसके साथ उसी प्रकार रमण कर पहले ही की तरह जा कर राजा के पास लेटने लगी । राजा ने रोक दिया । अगले दिन उसने आज्ञा दी कि ‘किन्नर देवी मेरे दिये हुए सभी अलंकार पहन कर आवे ।’ वह ‘मेरा सिंह-कुण्डल स्वर्णकार के पास है’ कह कर नहीं गयी । दुबारा बुलायी जाने पर एक ही कुण्डल धारण किये पहुँची । राजा ने पूछा—

“तेरा (दूसरा) कुण्डल कहाँ है ?”

“सुनार के पास ।”

उसने सुनार को बुलाकर पूछा—“इसका कुण्डल क्यों नहीं देता ?”

“देव ! मेरे पास नहीं है ।”

राजा क्रोधित हुआ । ‘चण्डालिनी ! मेरे जैसे को तेरा स्वर्णकार बनना होगा’ कह, वह कुण्डल आगे डाल पुरोहित को कहा—“मित्र ! तूने सत्य कहा था । जा इसका सिर कटवा डाल ।”

उसने उसे राजभवन में ही एक ओर बिठा दिया और राजा से जाकर बोला—“देव ! किन्नर देवी के प्रति क्रुद्ध न हों । सभी स्त्रियाँ ऐसी ही होती हैं । यदि स्त्रियों की दुश्चरित्रता देखनी हो तो मैं इनका पाप तथा मायावीषन दिखाऊँगा । आर्ये भेष बदलकर जनपद में घूमें ।” राजा ने ‘अच्छा’ कहा और माँ को राज्य मोंप उसके साथ चारिका के लिए निकल पड़ा । वे योजन भर मार्ग जाकर महामार्ग पर बैठे थे । उन्होंने देखा कि एक गृहस्थ पुत्र के लिए “मंगल” कर एक कुमारी को डोली में बिठा बहुत से लोगों के साथ चला जा रहा है । उसे देख, पुरोहित बोला, “यदि इच्छा हो तो मैं तुम्हारे साथ इस कुमारी का रमण करा सकता हूँ ।”

“क्या कहते हो ! इतने आदमी हैं ! ऐसा नहीं हो सकता ।”

“देव ! तो देखें ।”

उसने आगे-आगे जा, सड़क से हटकर एक कनात गाड़ी और राजा को उसमें बिठा, स्वयं सड़क के किनारे बैठ रोने लगा । गृहस्थ ने उसे देख पूछा—

“तात ! क्यों रोता है ?”

“मेरी भार्या के पैर भारी हो गये हैं । उसे मैं उसके मायके पहुँछाने जा रहा था । रास्ते में ही गर्भ परिपात हो गया । इस कनात में वह कष्ट पा रही है । कोई औरत उसके पास नहीं है । मैं भी वहाँ नहीं जा सकता । कह नहीं सकता क्या होगा ?”

“एक स्त्री चाहिए । रो मत । बहुत स्त्रियाँ हैं । एक चली जायेगी ।”

“तो यह कुमारी ही चली जाय । इसका भी मंगल होगा ।”

उसने सोचा, “ठीक तो कहता है । इस निमित्त से पुत्र-वधू का भी मंगल होगा । वह भी बेटा-बेटी वाली होगी ।” उसने उसे ही भेजा दिया । वह कनात के अन्दर गयी । वहाँ राजा को देख उस पर मुग्ध हो गयी और उसके साथ रमण किया । राजा ने भी उसे अँगूठी दी । जब वह काम समाप्त कर बाहर आयी तो उससे पूछा—“क्या हुआ ?”

“स्वर्ण-वर्ण पुत्र ।”

गृहस्थ उसे ले चल दिया । पुरोहित ने भी राजा के पास पहुँच कहा, “देव ! देखा । कुमारियाँ भी ऐसी पापिन होती हैं । अन्य स्त्रियों का तो कहना ही क्या ! लेकिन क्या तुमने उसे कुछ दिया ?”

“हाँ, अँगूठी दी है।”

“यह उसे नहीं देगे।”

उसने शीघ्रता से आगे बढ़ रथ को रोक लिया और “क्या है?” पूछने पर बोला : “यह मेरी ब्राह्मणी के जूड़े में रखी अँगूठी ले आयी है” और उसे कहा “अम् अँगूठी दे।”

उसने वह देते हुए ब्राह्मण के हाथ नाखून से नोच डाले और बोली, “चोर ! यह ले।”

इस प्रकार ब्राह्मण ने राजा को नाना उपायों से अनेक अतिचारिनियों का दर्शन करा कर कहा, “देव ! इधर ऐसा ही है। आर्ये अन्यत्र चले।” राजा सारे जम्बुद्वीप में घूमा। फिर ‘वे सभी स्त्रियाँ ऐसी ही होंगी, इनसे हमें क्या, आओ रुकें’ कह वाराणसी लौट पुरोहित ने राजा से निवेदन किया, “महाराज स्त्रियाँ ऐसी ही होती हैं। यह प्रकृति से ही पापिन हैं। देवी ! किन्नर देवी को क्षमा करें।” पुरोहित के कहने से राजा ने उसे क्षमा कर दिया, किन्तु उस जगह से निकलवा दिया। उसे उसके स्थान से च्युत कर एक दूसरी देवी को पटरानी बनाया। उस कुबड़े को भी वहाँ से निकलवा; जम्बू शाखा भी कटवा डाली। उस समय कण्डरी पञ्चाल-चण्ड था उसने अपने अनुभव की बात सुनाते हुए ही गाथा कही—

यं वे विस्वा कण्डरी-किन्नरानं
सन्निवृत्तियो न रमन्ती अगारे
तं तादिसं मच्चं चजित्वा भरिया
अञ्जं दिस्वा पुरिसं पोठसपिं ॥२१॥

[कण्डरी तथा किन्नर की बात देखकर जानना चाहिए कि सभी स्त्रियाँ घर में रमण नहीं करती हैं। उस देवी ने उस राजा सदृश पुरुष को छोड़कर दूसरे कुबड़े के साथ रमण किया ॥२१॥

और भी पूर्व समय में बक नाम का राजा धर्मानुसार राज्य करता था। उस समय वाराणसी के पूर्व-द्वार पर रहने वाले एक दरिद्र पुरुष की पञ्चपाप नामक कन्या थी। पूर्व जन्म में भी वह एक दरिद्र-कन्या ही थी। वह मिट्टी गूँधकर घर की दीवार लीप रही थी। एक प्रत्येक-बुद्ध को अपनी सहारा लेने की

जगह को थोड़ा और झुकाने के लिए मिट्टी की अपेक्षा थी। उसने सोचा, 'मिट्टी कहाँ मिलेगी?' उसे ध्यान आया, "वाराणसी में मिल सकेगी।" उसने वस्त्र धारण किया और पात्र हाथ में ले, नगर में प्रविष्ट हो उसके पास जा खड़ा हुआ। उसने क्रोधभरी नजर से देखते हुए कहा, "श्रमण ! मिट्टी भी नहीं मिली" और बड़ा सा मिट्टी का ढेला लाकर पात्र में डाल दिया। उसने उस मिट्टी से अपने सहारे की जगह को ठीक कर लिया। मिट्टी का ढेला देने के फल-स्वरूप उसका शरीर कोमल हो गया। किन्तु क्रोध से देखने के कारण उसके हाथ, पाँव, मुख, आँखें और नाक बद-शक्ल हो गयी। इसी से उसका नाम 'पञ्चपापा' पड़ गया।

एक दिन वाराणसी-नरेश रात को भेष बदल कर नगर का हाल जानने के लिए उधर जा निकला। उसने भी गाँव की बालिकाओं के साथ खेलते-खेलते बिना जाने राजा का हाथ पकड़ लिया। वह उसके हाथ के स्पर्श के प्रभाव से होश ठिकाने न रख सका। उसे ऐसा लगा, मानो दिव्य-स्पर्श छू गया हो। स्पर्श-रागाभिभूत हो उसने उस अवस्था में भी उसे हाथों से पकड़ पूछा, "तू किसकी लड़की है !"

"द्वार पर रहने वाली की।"

फिर यह जान कि उसका कोई स्वामी नहीं है, उसने कहा, "मैं तेरा स्वामी होऊँगा। जा माता-पिता से अनुमति ले आ।" वह माता-पिता के पास पहुँची और बोली, "एक पुरुष मुझे चाहता है।" "वह भी कोई दरिद्र ही होगा, यदि तुझे चाहता है, अच्छा" कह उन्होंने आज्ञा दे दी। उसने जाकर माता-पिता से आज्ञा मिलने की बात कही। वह उसके साथ उसी घर में रहा और प्रातःकाल होते-होते राजभवन चला गया। तब से राजा भेष बदल कर नियमित रूप से वहाँ जाता और अन्य किसी स्त्री की ओर देखना न चाहता।

एक बार उस लड़की के पिता को रक्तातिसार हो गया। बिना पानी के दूध-घी-मधु तथा शक्कर से बनी हुई खीर उसकी दवाई थी। दरिद्रता के कारण वे उसे प्राप्त न कर सकते थे। तब पञ्चपापा की माँ ने उसे कहा— "अम्म ! क्या तेरा स्वामी खीर प्राप्त कर सकेगा ?"

"माँ ! मेरा स्वामी हमसे भी दरिद्र होगा। तो भी मैं उससे पूछूँगी। चिन्ता न करें।"

उसके आने के समय वह चिन्ताकुल हो बैठ रही । राजा ने आकर पूछा, “चिन्तित क्यों है !”

जब उसे कारण मालूम हुआ, तो भद्रे ! ऐसी महेंगी औषधि कहाँ से ला सकूँगा, ” कह, सोचने लगा, “मैं सदैव ऐसे ही नहीं चला सकता । रास्ते में खतरा भी हो सकता है । यदि इसे रनिवास में ले जाऊँ तो लोग इसके दिव्य-स्पर्श की बात न जानने के कारण मजाक करेंगे कि हमारा राजा यक्षिणी को ले आया है । मैं सारे नगरवासियों को इसके स्पर्श से परिचित करा निन्दा से मुक्त होऊँगा ।” तब बोला, “भद्रे ! चिन्ता न कर । मैं तेरे पिता के लिए खीर लाऊँगा ।” फिर उसके साथ रमण कर राजभवन गया और अगले दिन वैसी खीर पकवा, पत्ते लेकर दो दोने बनवाये और उनमें से एक में खीर डाली और दूसरे में चूळमणि । उन्हें बाँध, रात को ले जाकर दिया और बोला, “भद्रे ! हम दरिद्र हैं । बड़ी कठिनाई से व्यवस्था की । अपने पिता से कहना कि आज इस दोने में से खीर खाये । कल इसमें से ।” उसने वैसा ही किया । उसका पिता ओज की अधिकता से थोड़ी ही खीर खाकर तृप्त हो गया । शेष माँ को दे उसने स्वयं भी खायी । तीनों सुखी हुए । चूळमणि वाला दोना अगले दिन के लिए रख दिया । राजा ने अपने घर पहुँच, मुँह धोकर कहा, “मेरी चूळमणि लाओ ।” “देव ! दिखायी नहीं देती ।”

सारे नगर में खोजो ।”

“खोजने पर भी नहीं मिली ।”

“तो नगर के बाहर दरिद्र गृहों में भात रखने के पत्तों के दोनों तक में खोजो ।”

खोजने पर जब उसके घर में मणि मिल गयी तो उसके माता-पिता को चोर मान, बाँध कर ले गये । उसका पिता बोला—

“स्वामी ! हम चोर नहीं है । इस मणि को कोई दूसरा लाया है ।”

“कौन लाया है ?”

“हमारा दामाद ।”

“वह कहाँ है ?”

“हमारी लड़की जानती है ।”

तब पिता ने उससे बात-चीत की—

“अम्म ! अपने स्वामी को पहचानती है !”

“नहीं पहचानती हैं ।”

“यदि ऐसा है तो हमारे प्राण नहीं बच सकते ।”

तात ! वह अंधेरे में आकर अंधेरे में ही चला जाता है । इसलिए उसकी शकल नहीं पहचानती हैं । हाँ हाथ के स्पर्श से उसे पहचान सकती हैं ।”

उसने राज-पुरुषों से कहा । उन्होंने राजा से कहा । राजा ने अजानकार की तरह कहा, “तो उस स्त्री को राजाङ्गन में कनात में रख कर, हाथ भर का छेद कर नगरवासियों को इकट्ठा कर, हाथ के स्पर्श से चोर को पकड़वाओ ।” राज-पुरुष वैसा करने के लिए उसके पास पहुँचे, तो उसकी शकल ही देखकर उन्हें घृणा हो गयी । वे बोले, “यह पिशाची है ।” घृणा के मारे वे उसे छू नहीं सके । किन्तु वे उसे ले आये और राजाङ्गन में कनात के अन्दर रख सारे नगर वासियों को इकट्ठा किया । जो जो आता और छेद में से हाथ आगे बढ़ाता, वह उस-उस के हाथ का स्पर्श करके कहती, “यह नहीं ।” आदमी उसके दिव्य-स्पर्श सदृश स्पर्श में आसक्त हो उसे छोड़ कर न जा सकते । वे सोचते, “यदि यह दण्डनीय है, तो इसका दण्ड चुकाकर भी, इसे दासी, काम करने वाली बनाकर भी घर ले चलेंगे ।” राजपुरुषों ने उन्हें डण्डे से पीट कर हटाया । उपराज से लेकर सभी पागल से हो गये । तब राजा ने “शायद मैं होऊँ” कह हाथ बढ़ाया । उसका हाथ पकड़ते ही वह चिल्लायी, “मैंने चोर पकड़ लिया ।” राजा ने उन आदमियों से पूछा, “जब इसने तुम्हारे हाथ को पकड़ा तो तुम क्या सोचने लगे !” उन्होंने यथार्थ बात कह दी ! तब राजा बोला, “मैंने अपने घर लाने के लिए ही ऐसा किया । अन्यथा इसके स्पर्श से अपरिचित तुम मेरी निन्दा करते । इसलिए मैंने तुम सबको स्पर्श करा दिया । अब बताओ, यह किसके घर रहने योग्य है?”

उसका अभिषेक कर उसे पटरानी बनाया गया । उसके माता-पिता को भी ऐश्वर्य दिलाया गया । तब से वह उसमें इतना आसक्त हुआ कि न इजलास लगाता और न किसी दूसरी स्त्री की ओर देखता । वे भेद डालने का अवसर देखने लगीं ।

उसे एक दिन स्वप्न में दो की पटरानी होने का लक्षण दिखायी दिया । उसने राजा से कहा । राजा ने स्वप्न की व्याख्या करने वालों को बुला कर

पूछा, "इस प्रकार का स्वप्न दिखायी देने पर क्या होता है ?" उन्होंने दूसरी स्त्रियों से रिश्वत लेकर उत्तर दिया, "महाराज ! देवी का सर्वश्वेत हाथी पर बैठे दिखायी देना तुम्हारे मरण का पूर्व लक्षण है और हाथी के कन्धे पर बैठे-बैठे चन्द्र का स्पर्श करना तुम्हारे शत्रु-राजा के आगमन का पूर्व लक्षण है ।" राजा ने पूछा, "अब क्या करना चाहिए !" "देव ? उसे मार नहीं सकते । इसे नौका पर चढ़ा नदी में बहा देना योग्य है ।" राजा ने आहार, वस्त्र और अलंकारों सहित उसे रात को नौका में बिठा नदी में छोड़ दिया । वह नदी में बहती हुई, नीचे जहाँ पावारिय राजा नौका में बैठा जल-क्रीड़ा कर रहा था, उसके सामने जा लगी । उसके सेनापति ने नौका देखते ही कहा, "यह नौका मेरी है ।" राजा बोला, "नौका के भीतर का सामान मेरा है ।" नौका के पास आने पर उसे देख पूछा, "पिशाचिन् सी तू कौन है ?" उसने मुस्कुरा कर बक राजा की पटरानी होने की बात कह सारी कथा कह सुनायी : वह पञ्चपापा सारे जम्बुद्वीप में प्रसिद्ध थी । राजा ने उसे हाथ से ऊपर उठाया । हाथ में लेते ही स्पर्श-राग के वशीभूत हो दूसरी स्त्रियों को स्त्री तक न मान, उसे पटरानी बना दिया । वह उसे प्राणवत् प्यारी हो गयी ।

वक को जब यह समाचार मिला तो बोला "मैं उसे अपनी पटरानी नहीं बनाने दूंगा ।" उसने सेना तैयार की और नदी के दूसरे तट पर उसके मुकाबिले पड़ाव डाल संदेश भिजवाया "या तो मेरी भार्या दे दे अथवा युद्ध के लिए तैयार हो जाये ।" वह युद्ध के लिए तैयार हो गया । दोनों राजाओं के आमात्यों ने सोचा, "स्त्री के लिए मरना योग्य नहीं है । पूर्व-स्वामी होने से यह वक की है और नौका में मिलने से पावारिय की । इसलिए एक एक सप्ताह एक एक के घर में रहे ।" आपस में मंत्रणाकर उन्होंने राजाओं को समझाया । वे दोनों प्रसन्न हुए और उन्होंने नदी के दोनों तटों पर आमने सामने नगर बसा लिए । वह दोनों की पटरानी हो गयी । दोनों उसपर मस्त हो गये । वह एक के घर में सप्ताह भर रहकर नौका से दूसरे के घर जाती । नौका लेकर ले जाने वाले बूढ़े लँगड़े-चूले मल्लाह के साथ नदी के बीच में पाप-कर्म करती । उस समय कुणाल पक्षी-राज वक था । इसलिए इस अपनी देखी बात को लाते हुए उसने कहा—

वकस्त च पावारिकस्त रञ्जो
 अचचन्तका मानुगतस्त भरिया
 अवाचरी वद्ववमानुगस्त
 कं वा इत्थी नातिचरे तदञ्जं ॥२२॥

[अत्यन्त कामुक राजा वक तथा पावारिक की रानी ने जब अपने वश में आये भेजने वाले के साथ अनाचार किया तो स्त्री और किसके साथ अनाचार नहीं करेगी ? ॥२२॥]

और भी । पूर्व समय में ब्रह्मदत्त की भार्या का नाम था पियङ्गानि । झरोखा खोलने पर उसने मंगल—घोड़े के साईस को देखा । राजा के सो जाने पर वह झरोखे से उतरी और उसके साथ रमण कर फिर महल पर चढ़, शरीर पर सुगन्धित-चूर्ण मल, राजा के साथ जा लेटी । एक दिन राजा ने सोचा, “क्या बात है कि देवी का शरीर रोज रोज आधी रात के समय ठण्डा होता है ? मैं इसका पता लगाऊँगा” । एक दिन वह निद्रित की तरह पड़ रहा और जब वह उठ कर जाने लगी तो उसके पीछे पीछे हो लिया । जब उसने देखा कि वह साईस के साथ रमण करती है, तो वह वापिस आ कर शय्या पर लेट रहा । वह भी रमण कर आकर छोटी चारपाई पर लेट रही । अगले दिन राजा ने उसे अमात्यों के बीच ही बुला उसका कर्म प्रकट किया । ‘फिर सभी स्त्रियाँ पापिन होती हैं’ सोच उसका वध करने योग्य, बेड़ी डालने योग्य अंगहीन कर देने योग्य दोष को क्षमा कर उसे पदच्युत कर, दूसरी स्त्री को पटरानी बनाया । उस समय कुणाल राजा ही ब्रह्मदत्त था । इसलिए अपनी देखी बात ही लाकर उसने कहा—

पिगियानि सबबलोकित्सास्त
 रञ्जो पिया ब्रह्मदत्तस्त भरिया
 अवाचरी वद्ववसानुगस्त
 तं वापि सा नाञ्जग कामकामिनी ॥२३॥

[सर्व लोकेश्वर ब्रह्मदत्त राजा की प्रिया भार्या ने वशीभूत के साथ अनाचार किया । उस कामुका ने उसे भी नहीं छोड़ा ॥२३॥]

पुर्वं (-जन्म) की कथाओं द्वारा स्त्रियों के दोष कह और भी तरह से उनके दोष प्रकट करते हुए कहा—

खुदानं लहृचित्तानं अकतञ्जनं दूष्मिनं
नादेवसत्तो पुरिसो थीनं सद्धातुं अरहति ॥२४॥
न ता पजानन्ति कतं न किच्चं
न मातरं पितरं भ्रातरं वा
अनरिया समतिक्कन्तघम्मा
सस्सेव चित्तस्स वसं वजन्ति ॥२५॥

चिरानुवुत्थं पि पियं मनापं
अनुकम्पकं पाणसमं पि सन्तं
आवासु किच्चेसु च नं जहन्ति
तस्माहं इत्थीनं न विस्सासामि ॥२६॥

थीनं हि चित्तं यथा वानरस्स
कम्पकस्स यथा रुक्खछाया
चलाचलं हृदयं इत्थियानं
चक्कस्स नेमि विय परिवत्तति ॥२७॥

यदा न पस्सन्ति समेक्खमाना
आदेय्यरूपं पुरिसस्स वित्तं
सण्हाहि वाचाहि नयन्ति-मेतं
कम्बोजका जलजेनेव अस्सं ॥२८॥

यदा न पस्सन्ति समेक्खमाना
आदेय्यरूपं पुरिसस्स वित्तं
समन्ततो नं परिवज्जयन्ति
तिण्णो नदीपारगतो व कुल्लं ॥२९॥

सिलेसूपमा सिखिरिवा सब्बभक्खा
तिक्खा भया नदी-रिव सीघसोता
सेवन्ति हेता पियं अप्पियं च
नाभा यथा ओरकुलं परं च ॥३०॥

न ता एकस्स वा द्वित्रं आपणो व पसारितो
 य ता मय्हं ति मञ्जेय्य वातं जालेन बाधोये ॥३१॥
 यथा नदी च पन्थो च पानागारं समा पपा
 एवं लोकित्थियो नाम, वेला तासं न विज्जति ॥३२॥
 घतासन समा हेता कण्डसप्पसिरुपमा
 गावो बहितिण्णस्सेव ओमसन्ति वरं वरं
 घतासनं कुञ्जरं कण्हसप्पं
 मुद्धाभिसित्तं पमदा च सब्बा
 एते न सो निच्चयत्तो भजेथ
 तेसं भवे दुब्बिदु सब्बभावो ॥३४॥
 नाच्चन्तवण्णा न बहून् कन्ता
 न दक्खिणा पमदा सेवितब्बा
 न परस्स भीत्या न धनस्स हेतु
 एत्तिथियो पञ्च न सेवितब्बा ॥३५॥

[जिस आदमी के सिर भूत न आया हो ऐसे किसी भी आदमी के लिए यह उचित नहीं है कि वह क्षुद्र, शीघ्र परिवर्तनशील, अकृतज्ञ तथा (मित्र-) द्रोही स्त्रियों का विश्वास करे ॥२४॥ ये उपकार को पहचानती हैं और न कर्तव्य को, न माता को, पिता को और न भाई को। ये निर्लज्ज, धर्म की सीमा को लांघने वाली, अपने चित्त के ही वश में हो जाती हैं ॥२५॥ जो चिरकाल तक साथ रहा हो, जो प्रिय हो, जो मन को अच्छा लगने वाला हो, जो अनुकम्पा करने वाला हो तथा जो प्राण के समान हो, ऐसे पुरुष को भी ये आपत्ति आ पड़ने पर, काम आ पड़ने पर छोड़ देती हैं। इसलिए मैं स्त्रियों का विश्वास नहीं करता ॥२६॥ स्त्रियों का चित्त वानर के चित्त के समान होता है, वह वृक्ष की छाया की तरह ऊँचा-नीचा होता है। स्त्रियों का चित्त चंचल होता है। वह चक्र की नेमी की तरह ऊपर नीचे आता जाता रहता है ॥२७॥ जब इन्हें खोजते-खोजते कहीं किसी पुरुष के पास ऐसा धन दिखायी देता है जो उससे लिया जा सकता है तो वह उसे चिकनी चुपड़ी बातों से ऐसे ही फँसा लेती हैं जैसे कम्बोज-वासी शैवाल से घोड़ों को ॥२८॥ जब इन्हें खोजते-खोजते कहीं किसी पुरुष के

पास ऐसा धन नहीं दिखायी देता जो उससे लिया जा सकता हो, तो वह उसे वैसे ही छोड़ देती है जैसे नदी पार हो जाने पर आदमी नौका को ॥२९॥ श्लेषोष्म, अग्नि-शिखा के समान सर्वभक्षी, तीक्ष्ण, नदी की तरह वेगवती स्त्रियाँ प्रिय-अप्रिय सभी का उसी प्रकार सेवन करती हैं जैसे नौका इस पार तथा उस पार का भी ॥३२॥ जिस प्रकार खुली हुई दुकान किसी एक या दो आदमियों की नहीं होती उसी प्रकार स्त्रियाँ भी किसी एक या दो की नहीं होतीं । जो पुरुष उन्हें अपनी समझे वह जाल से हवा को भी बाँध सकता है ॥३१॥ जैसे नदी, रास्ता, पानागार, सभा तथा प्याउ, वैसे ही स्त्रियाँ । इनका कोई खास समय नहीं ॥३२॥ ये अग्नि के समान हैं, ये कृष्ण-सर्प के फन के समान हैं, ये नयी-नयी घास की इच्छा करने वाली गौओं के समान हैं ॥३३॥ अग्नि, हाथी; काले सर्प, राजा तथा सभी स्त्रियों का कभी भी पूर्ण विश्वास न करें । उनका स्वभाव दुर्ज्ञेय ही रहता है ॥३४॥ न अन्यत्त रूपवती; न अनेकों की प्रिया, न अति दक्ष स्त्री का सेवन करे और न परायी स्त्री का तथा न धन के लिए संगति करने वाली का । इन पाँच प्रकार की स्त्रियों की संगति न करे ॥३५॥]

ऐसा कहने पर जनता ने बोधिसत्त्व को साधुवाद दिया—“ओह ! सुकथित है ।” वह इस प्रकार स्त्रियों के अवगुण कह कर चुप हो गया ।

यह सुन आनन्द शृध-राज ने ‘मित्र कुणाल-राज ! मैं भी अपने ज्ञान-बल से स्त्रियों के दुर्गुण कहता हूँ’ कह उनके अवगुण आरम्भ किये ।

इस बात को प्रकट करते हुए भगवान् ने कहा-तब आनन्द शृध-राज ने कुणाल पक्षी की कथा का आदि, मध्य तथा अवसान जानकर उस समय ये गाथायें कहीं—

पुण्ण पि चे मं पठ्ठावि धनेन
 दज्ज इत्थिया पुरिसो सम्मताय
 लद्धा ण्णं अति मञ्जेय तं पि
 तासं वसं असतीनं न गच्छे ॥३६॥
 उट्ठाहकञ्च पि अलीनवृत्ति
 कोमारभत्तारं पियं मनापं

आवासु किञ्चेसु न नं जहन्ति
तस्मा हि इत्थीनं न विस्ससामि ॥३७॥

न विस्ससे इच्छति मं ति पोसो
न विस्ससे रोदति मे सकासे
सेवन्ति हेता पियं अप्पियं च
नावा यथा ओर कुलं परं च ॥३८॥

न विस्ससे साखपुराणसन्थतं
न विस्ससे मित्तपुराणचोरं
न विस्ससे राजा सखा ममं ति
न विस्ससे इत्थि वसन्नं मातरं ॥३९॥

न विस्ससे रामकटासु नारिसु
अचचन्त सीलासु असञ्जतासु
अचचन्तपेमानुगतस्स भरिया
न विस्ससे तित्थसमा हि नारियो ॥४०॥

हनेय्यु छिन्देय्युं पि छेदयेय्युं
कठं पि छेत्वा रुधिरं पिपेय्युं
मा दीनकामासु असञ्जतासु
भावं करे गङ्गतिथूपमासु ॥४१॥

मुसा तासं यथा सच्चं सच्चं तासं यथा मुसा
गावो बहितिणस्सेव ओमसन्ति वरं वरं ॥४२॥

गतेन एता पलोभेन्ति पेक्खितेन मिहितेन च
अथो पि दुल्लिवत्थेन मञ्जुना णितेन च ॥४३॥

चोरियो कठिना हेता वाळा च लपसक्खरा
न ता किञ्चि न जानन्ति यं मनुस्सेसु वञ्चनं ॥४४॥

असा लोकित्थियो नाम वेला तासं न विज्जात,
सारत्ता च पगम्मा च सिखी सब्बघसो यथा ॥४५॥

नत्थ इत्थीनं पियो नाम अप्पियो पि न विज्जति,

सेवन्ति हेता पियं अप्पियं च

नावा यथा ओरकुलं परं च ॥४६॥

नत्थ इत्थीनं पियो नाम अप्पियो पि न विज्जति,

घनत्ता पतिवेल्लन्ति लता व दुमनिस्सिता ॥४७॥

हत्थिबन्धं अस्सबन्धं गोपुरिसं च चण्डालं

छवडाहकं [रेप्फछडुकं]

सघनं अनुपतन्ति नारियो ॥४८॥

कुलपुत्तं पि जहन्ति अकिञ्चनं छवकसमं

सदिसं अपि गच्छन्ति [अनुपतन्ति] घनहेतु नारियो ॥४९॥

[यदि यह सारी पृथ्वी घन से पूर्ण हो और पुरुष अनुरक्त होने के कारण उसे स्त्री को दे दे । समय आने पर वह उस पुरुष को भी अवहेलना करेगा । इसलिए असतियों के वश न हो ॥३६॥ उत्साही, आलस्य-रहित, प्रिय, मनोरम कुमार-पति को भी वे आपत्ति आने पर, मौका पड़ने पर छोड़ देती हैं । इसलिए मैं स्त्रियों का विश्वास नहीं करता ॥३७॥ 'मुझे चाहती है' समझकर पुरुष स्त्री का विश्वास न करे, "मेरे पास रोती है" समझ कर पुरुष स्त्री का विश्वास न करे । ये प्रिय तथा अप्रिय सभी का उसी प्रकार सेवन करती हैं जैसे नौका इस पार और उस पार का ॥३८॥ पुराने पत्नों वाली शाखा का विश्वास न करे, पुराने मित्र चोर का विश्वास न करे, 'मेरा साथी है' समझकर राजा का विश्वास न करे और 'दस सन्तानों की माता है' समझ कर स्त्री का विश्वास न करे ॥३९॥ मुखों की रति-भाजन, शील-अतिक्रान्त, असंयत नारियों का विश्वास न करे । 'अत्यन्त प्रेमानुगत भार्या है' समझ कर भी विश्वास न करे । नारियाँ तीर्थों के समान सर्व-साधारणा होती हैं ॥४०॥ ये मार भी डाल सकती हैं, काट डाल सकती हैं, कटवा डाल सकती हैं और गला काट कर खून भी पी सकती हैं, इन हीन विचार वाली असंयत नारियों का कभी विश्वास न करे । क्योंकि ये गंगा (नदी) के तीर्थ के समान एवं साधारण हैं ॥४०॥ उनका झूठ भी सत्य जैसा है और सत्य भी झूठ जैसा है । वे गडों के नित्य नया घास खोजने की तरह अच्छा-अच्छा खोजती हैं ॥४२॥ वे चाल से, नजर से, मुस्कराहट से, वस्त्र और मधुर वाणी से लुभाती

हैं ॥४३॥ चौरणि, कठोर हृदया, दुष्टा तथा मधुर भाषिणी—ये मनुष्यों के ठगने को कुछ समझती ही नहीं ॥४४॥ लोक में स्त्रियाँ असति होती हैं, उनका कोई समय नहीं । वे सभी पर अनुरक्त होने वाली तथा प्रगल्भा होती हैं, अग्नि शिखा के समान सभी को ग्रहण करने वाली ॥४५॥ स्त्रियों का प्रिय अप्रिय कोई भी नहीं । जिस प्रकार नौका इस तीर तथा उस तीर दोनों का स्पर्श करती है, उसी प्रकार ये प्रिय तथा अप्रिय दोनों का सेवन करती हैं ॥४६॥ स्त्रियों का प्रिय अप्रिय कोई नहीं, धन के लिए वे किसी के भी साथ वैसी ही लिपट जाती हैं जैसे लता पेड़ के साथ ॥४७॥ धन के लिए नारियाँ हथवान, साइस, ग्वाले, चाण्डाल, मुर्दा जलाने वाले तथा भंगी (तक) के पास चली जाती हैं ॥४८॥ अकिंचन होने से, स्त्रियाँ कुलपुत्र का भी त्याग कर देती हैं और धन के लिए चाण्डाल-समान पुरुष के पास भी चली जाती हैं ॥४९॥

इस प्रकार अपने प्रान के अनुसार आनन्द गृध्र-राज ने स्त्रियों के दुर्गुण कहे और चुप हो गया । उसकी बात सुन नारद ने भी अपने ज्ञान के अनुसार उनके अवगुण कहे ।

उन्हें प्रकट करते हुए शास्ता ने कहा—तब उस समय नारद देव-ब्राह्मण ने आनन्द गृध्रराज की कथा का आदि, मध्य तथा अवसान जान कर ये गाथायें कहीं—

चत्तारो मे न पूरेन्ति, ते मे सुणाय भासतो
समुद्रो ब्राह्मणो राजा इत्थि चापि दिजम्पति ॥५०॥
सरिता सागरं यन्ति या काचि पथवि सिता
ता समुद्रं न पूरेन्ति, ऊनत्ता हि न पूरति ॥५१॥
ब्राह्मणो च अथियानं वेदं अक्खानपञ्चमं
भिय्यो पि सुतं इच्छेय्य, ऊनत्ता हि न पूरति ॥५२॥
राजा च पठावि सब्बं ससमुद्रं सपब्बतं
अक्खवावसे विजिनित्वा अनन्तरतनोचितं
पारं समुद्रं पत्थेति, ऊनत्ता हि न पूरति ॥५३॥

एकमेकाय इत्थिया अट्ठअट्ठ पतिनो सिया
सूरा च बलवन्ता च सब्बकामवसाहरा,
करेय्य नवमे छन्दं, ऊनत्ता हि न पूरति ॥५४॥

सब्बित्थियो सिखिरिव सब्बभक्खा
सत्त्वित्थियो नदिरिव सब्बवाही
सब्बित्थियो कण्ठकानं पसाखा
सब्बित्थियो धनहेतु वजन्ति ॥५५॥

वातं जलेन परो परामसे
ओसिञ्चिया सागरं एकपाणिना
सकेन तालेन हनेय्य घोसनं
यो सब्ब भावं पमदासु ओस्सजेय्य ॥५६॥

चोरीनं बहुबुद्धीनं यासु सच्चं सुदुल्लभं
थीनं भावो दुराजानो मच्छस्सेवोवके गतं ॥५७॥

अनला मुदुसम्भासा दुप्पूरा ता नदीसमा
सीदन्ति, नं विदित्वान आरका परिवज्जये ॥५८॥

आवट्ठनी महामाया ब्रह्मचरियविकोपना
सीदन्ति, नं विदित्वान आरका परिवज्जये ॥५९॥

यं एता उपसेवन्ति छन्दसा वा धनेन वा
जातवेदो व संठानं खिप्पं अनुडहन्ति नं ॥६०॥

[हे द्विजपति ! मेरा कहना सुन । समुद्र, ब्राह्मण, राजा तथा स्त्री—इनकी कभी तृप्ति नहीं होती ॥५०॥ पृथ्वी पर जितती नदियाँ हैं वे सभी सागर में जा कर गिरती हैं, किन्तु वे समुद्र को नहीं भरती, न्यूनता के कारण पूर्ति नहीं होती ॥५१॥ ब्राह्मण (चार) वेद, पाँचवें इतिहास के अतिरिक्त और भी श्रुतिज्ञान की इच्छा करता है, न्यूनता के कारण तृप्ति नहीं होती ॥५२॥ ससमुद्र तथा सपर्वत अनन्त रतनों की राशि सारी पृथ्वी को जीत कर भी राजा समुद्र पार जीतने की भी इच्छा करता है, न्यूनता के कारण पूर्ति नहीं होती ॥५३॥ यदि एक एक स्त्री के शूर, बलवान् तथा सभी कामनायें पूरी

करने वाले आठ-आठ भी पति हों तो वह नौवें की इच्छा करती हैं, न्यूनता के कारण पूर्ति नहीं होती ॥५४॥ सभी स्त्रियाँ नदी की तरह सर्वभक्षिणी होती हैं; सभी स्त्रियाँ नदी की तरह सभी को बहा ले जाने वाली होती हैं; सभी स्त्रियाँ कांटों की झाड़ी होती हैं; और सभी स्त्रियाँ धन के लिए निकल कर चली जाती हैं ॥५५॥ जो स्त्रियों का एकान्त विश्वास करे वह जाल से हवा को रोके, एक हाथ से सागर को उलीचे तथा एक हाथ से ताली बजाये ॥५६॥ जिस प्रकार पानी में गयी मछली का पता नहीं लगता उसी प्रकार चौरिणी, बहु बुद्धिमान स्त्रियों का भी भाव दुर्ज्ञेय है, क्योंकि उनमें सत्य दुर्लभ है ॥५७॥ झूठ बोलने वाली, मधुर बोलने वाली, नदी के समान भरी ही न जा सकने वाली स्त्रियाँ डूबती हैं—ऐसा जान कर उनसे दूर ही दूर रहे ॥५८॥ जादूगरनी, महामाया-विनी, ब्रह्मचर्य को कुपित करने वाली स्त्रियाँ डूबती हैं—ऐसा जान कर उनसे दूर ही दूर रहे ॥५९॥ जो-जो रोग से अथवा धन से इनका सेवन करते हैं, उन्हें ये अग्नि की तरह शीघ्र ही जला डालती हैं ॥६०॥]

इस प्रकार नारद के स्त्रियों के दोष करने पर बोधिसत्व ने विशेष प्रकार से उनके दोष कहे ।

यह प्रकट करने के लिए शास्ता ने कहा—जब उस समय कुणाल शकुन ने नारद देव-ब्राह्मण के कथन का आदि, मध्य तथा अन्त जान कर ये गाथाएँ कहीं—

सल्लपे निसितखग्गपाणिना
पण्डितो अपि पिसाचदोसिना
उग्गतेजउरगं पि आसिदे
एको एकपमदं हि नालपे ॥६१॥
लोकचित्तमथना हि नारियो
नच्चगीतभणितमिहिताबुधा
बाधयन्ति अनुपट्ठितासति
दीपे रक्खसिगणो व वाणिजे ॥६२॥
नत्थि तासं विनयो न संवरो
मज्जमंसनिरता असञ्जता
ता गिलन्ति पुरिसस्स पाभतं
सागरे व मकरं तिमिङ्गलो ॥६३॥

पञ्चकामगुणसातगोचरा

उद्धता अनियता असञ्जता

ओसरन्ति पमदा पमादिनं

लोणतोय वतियं व आपका ॥६४॥

यं नरं उपरमन्ति नारियो

छन्दसा च रतिया धनेन वा

जातवेद सदिसं पि तादिसं

रागदोसवतियो डहन्ति नं ॥६५॥

अड्ढं अत्वा पुरिसं महद्धनं

ओसरन्ति सधनं सह अत्तना

रत्तचित्तं अतिवेठयन्ति नं

साल मालुवलता कानने ॥६६॥

ता उपेन्ति विविधेन छन्दसा

चित्रबिम्बमुखियो अलंकता

ऊहसन्ति पहसन्ति नारियो

संवरो व सति मायकोविदा ॥६७॥

जातरूपमणिमुत्तभूसिता

सक्कता पतिकुलेसु नारियो

रक्खिता अतिचरन्ति सामिकं

दानवं व हृदयन्तरस्सिता ॥६८॥

तेजवापि हि नरो विचक्खणो

सक्कतो बहुजनस्स पूजितो

नारिनं वसगतो न भासति

राहुना उपगतो व चन्दिमा ॥६९॥

यं करेय्य कुपितो विसो विसं

दुट्ठचित्तो वसं आगतं अरि

तेन भिय्यो व्यसनं निगच्छति

नारिनं वसगतो अपेक्खवा ॥७०॥

केसलूननखच्छिन्नतज्जिता
 पादपाणिकसदण्डताळिता
 हीनं एव उपगता हि नारियो
 ता रमन्ति कुणपे व मक्खिका ॥७१॥
 ता कुलेसु विसिखन्तरेसु वा
 राजधानिनिगमेसु वा पुन
 ओड्डितं नमुचि पासवाकरं
 चक्खुना परिवज्जे सुखस्थियो ॥७२॥

ओसजित्व कुसलं तपो गुणं
 यो अनरिय चारितानि-म-आचरि
 देवताहि निरयं निमिस्सति
 छेदगामि मणियं व वाणिजो ॥७३॥
 सो इध गरहितो परत्थ च
 दुम्मती उपगतो सकम्मुना
 गच्छति अनियतो गळागळं
 दुट्ठगव्वमरयो व उप्पथे ॥७४॥

सो उपेति निरयं पतापनं
 सत्तिसिम्बलिवनञ्च-म-आयसं
 आवसित्वा [न] तिरच्छान योनियं
 पेत्राजबिसयं न मुञ्चति ॥७५॥
 दिब्बखिड्डरतियो च नन्दने
 चक्कवति चरितं च मानुसे
 नासयन्ति पमदा पमादिनं
 दुग्गतिं च पटिपादयन्ति नं ॥७६॥

दिब्बखिड्डरतियो न दुल्लभा
 चक्कवत्तिचरितं च मानुसे
 सोवण्णव्यम्हणिलया व अच्छरा
 ये चरन्ति पमदाहं अनत्थिका ॥७७॥

कामधातुसमतिष्कमा गति
 रूपधातुया भावो न दुल्लभो
 वीतराग विसृपपत्तिया
 ये चरन्ति पमदाहं अनस्थिका ॥७८॥
 सबदुखसमतिष्कमं सिधं
 अचचन्तं अचलितं असंखतं
 निब्बुतेहि सुचि ही न दुल्लभं
 ये चरन्ति पमदाहं अनस्थिका ॥७९॥

[पण्डित को चाहिए कि वह भले ही सिर पर तलवार लिये आदमी से बात कर ले, भले ही क्रोधित पिशाच से बात कर ले, भले ही भयानक सर्प के पास चला जाय; किन्तु अकेला अकेली स्त्री से कभी बात न करे । ६१॥ नृत्य, गीत, वाणी तथा मुस्कराहट रूपी आयुध से लोक के चित्त को मथ डालने में समर्थ नारियाँ अनुपस्थित स्मृति-जन को उसी प्रकार पीड़ित करती हैं जैसे द्वीप की राक्षसियों ने व्यापारियों को ॥६२॥ उनमें न विनय होती है और न संयम होता है । वे असंयमी (नारियाँ) मद्य-मांस भक्षण में रत रहती हैं । जिस प्रकार सागर में (सब से बड़ी) तिमिंगल मछली मगर को निगल जाती है, उसी प्रकार ये पुरुष के धन को निगल जाती हैं ॥६३॥ पञ्च काम भोगों के मजे को खोजने वाली उद्धत, अनियत, असंयत नारियाँ प्रमादी पुरुष के पास वैसे ही जाती हैं जैसे नदियाँ समुद्र के पास ॥६४॥ प्रेम, रति अथवा धन के हेतु से जिस पुरुष के साथ नारियाँ रमण करती हैं, उस अग्नि समान पुरुष को भी वे रागद्वेष के वशीभूत हो जला डालती हैं ॥६५॥ यह जान लेने पर कि पुरुष बहुत धनी है वे अपने धन के साथ उसके पास पहुँचती हैं और तब वे उस अनुरक्त चित्त को ऐसे लिपटती हैं जैसे कानन में पालुव लता शाल वृक्ष को ॥६६॥ वे चित्र-विचित्र शरीर वाली, अलंकृत, मायाविनी, संयम-रहित नारियाँ नाना ढंग के द्वन्द्व से समीप आती हैं । वे हँसती हैं और मुस्कराती हैं ॥६७॥ सोने, माणिक्य-मोती से विभूषित, पति-कुलों में आदृत नारियाँ स्वामी के साथ अतिचार करती हैं जैसे दानव द्वारा हृदय में छिपा कर रखी हुई नारी ने किया ॥६८॥ तेजस्वी, बुद्धिमान्, सत्कृत,

बहुत जनों द्वारा पूजित आदमी भी नारियों के वशीभूत होने पर मन्द-प्रभा हो जाता है जैसे राहु से प्रसा हुआ चन्द्रमा ॥६९॥ क्रोधी, दुष्ट-चित्त शत्रु अपने वश में आये शत्रु की जितनी हानि करता है उससे भी कहीं अधिक उस आदमी की हानि होती है जो तृष्णा के कारण स्त्रियों के वश में हो जाता है ॥७०॥ खींच कर बाल उखाड़ दिये गये, नखों से शरीर छील दिया गया, तर्जित; पाँव, हाथ, चाबुक तथा डण्डे से ताड़ित होने पर भी नारियाँ हीन-पुरुष के पास जाती हैं जैसे मक्खियाँ लाश में रमण करती हैं ॥७१॥ वे स्त्रियाँ (वास्तव में) कुलों में, गलियों में, राजधानियों में अथवा निगमों में मार द्वारा फैलाये गये जाल हैं । सुखार्थी बुद्धिमान को उससे बचना चाहिए ॥७२॥ जो तप का त्याग कर अनायाचरण करता है वह देवताओं द्वारा नरक में भेज दिया जाता है जैसे महार्घ वस्तु दे कर छिन्न-युक्त मणि को प्राप्त करने वाला बनिया ॥७३॥ वह मूर्ख अपने कर्म के कारण यहाँ और वहाँ दोनों लोक में निन्दित होता है तथा देव-लोक और मनुष्य-लोक से न्युत होकर अनिश्चित काल के लिए नरक में जाता है जैसे दुष्ट गर्दभ वाली गाड़ी ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर ॥७४॥ वह तपन-शील नरक को प्राप्त होता है, शक्ति सदृश अयस-निर्मित काँटों वाले सिम्ब-लिवन को । वह पशु योनि को प्राप्त हो, प्रेत-योनि तथा असुर-योनि से मुक्त नहीं होता ॥७५॥ स्त्रियाँ प्रमादियों की नन्दन वन की दिव्य-क्रीड़ा-युक्त रति तथा मनुष्य-लोक के चक्रवर्ती चरित का नाश कर देती हैं और उनकी दुर्गति का कारण होती हैं । ७६॥ जो स्त्रियों के प्रति अनासक्त रहते हैं उन्हें दिव्य-क्रीड़ा-रति भी दुर्लभ नहीं और मनुष्य-लोक में चक्रवर्ती राज्य भी दुर्लभ नहीं तथा स्वर्णमय-विमानों में रहने वाली अप्सराएँ भी दुर्लभ नहीं ॥७७॥ जो स्त्रियों के प्रति अनासक्त रहते हैं उन्हें काम-घातु के अतिक्रमण से प्राप्त होने वाली गति तथा रूप-घातु का भाव भी दुर्लभ नहीं और वीतरागों का उत्पत्ति स्थान शुद्धवास लोक भी दुर्लभ नहीं ॥७८॥ जो स्त्रियों के प्रति अनासक्त रहते हैं उन पवित्र वैरागियों को सब दुःखों का अन्त-स्वरूप, शिव-स्वरूप, अविनाश-स्वरूप, स्थिर-स्वरूप, असंस्कृत निर्वाण भी दुर्लभ नहीं ॥७९॥]

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने अमृत महानिर्वाण तक धर्मापदेश ले जाकर समाप्त किया । हिमालय में किन्नर-महासर्प आदि ने तथा आकाश-स्थित देवताओं ने 'ओह ! बुद्ध लीला का कथन' कह साधुकार दिया । शृङ्घराज आनन्द, देव-

ब्राह्मण नारद, पूर्ण-मुख तथा पुष्य-कोकिल अपनी-अपनी परिषद् ले यथा स्थान गये । बोधिसत्व भी अपनी जगह चला गया । अन्य (जन) बीच-बीच में आकर बोधिसत्व के पास उपदेश ग्रहण कर, तदनुसार चल, स्वर्ग-परायण हुए ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठते हुए अन्तिम गाथा कही—

कुणालोहं तथा आसि, उदायी फुस्सकोकिलो
आनन्दो गिष्क्षराजासि, सारिपुत्तो च नारदो,
एवं धारेथ जातकं ॥८०॥

[उस समय मैं कुणाल था, उदायी पुष्य-कोकिल था, आनन्द गृधराजा था तथा सारिपुत्र नारद था—उसी प्रकार जातक को ग्रहण करना चाहिए ॥८०॥]

वे भिक्षु जाते समय शास्ता के प्रताप से गये, आते समय अपने-अपने प्रताप से ही आये । शास्ता ने महावन में उन्हें योग-विधि बतायी । वे उसी दिन अर्हत्व को प्राप्त हुए । देवताओं का बड़ा जोड़-मेला हुआ ! तब बोधिसत्व ने महासमय सुत्त का उपदेश दिया ।